इकाई 4 जनसंचार और संस्कृति

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 संस्कृति की संकल्पना

4.3 जनसंचार और संस्कृति का अंतःसंबंध

4.4 भारत में जनसंचार की परंपरा

4.4.1 प्राचीन काल में जनसंचार

4.4.2 मध्य काल में जनसंचार

4.4.3 आधुनिक काल में जनसंचार

4.5 जनसंचार और जनसंस्कृति

4.6 संस्कृति उद्योग

4.7 संस्कृति का विरूपीकरण

4.8 सारांश

4.9 बोध प्रश्न

4.0 उद्देश्य

जनसंचार और संस्कृति का गहरा संबंध है। जनसंचार के जिन तीन प्रमुख कार्यों सूचना, शिक्षा, मनोरंजन का उल्लेख किया जाता है उनका संबंध संस्कृति से है। सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के संप्रेषण द्वारा जनसंचार संस्कृति का ही प्रचार और प्रसार करता है। इस इकाई में आप संस्कृति का अर्थ, परिभाषा और संकल्पना क्या है इसे बता सकेंगे; जनसंचार और संस्कृति के अंतःसंबंधों को समझा सकेंगे; जनसंचार के विभिन्न रूपों का परिचय प्राप्त करेंगे; संस्कृति के उद्योग के रूप में परिवर्तित होने के महत्व और प्रभाव का उल्लेख कर सकेंगे; और जनसंचार के व्यापक फैलाव के कारण संस्कृति के विरूपीकरण के बारे में बता सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप 'जनसंचार और संस्कृति' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पहले की इकाई में आपने जनसंचार के श्रोता/दर्शक/पाठक समुदाय के बारे में पढ़ा है। जनसंचार और संस्कृति के पारस्परिक संबंधों का जनसंचार के अध्ययन में खास महत्व है। जनसंचार एक ओर यदि संस्कृति का अंग है तो वह संस्कृति के निर्माण और विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जनसंचार क्या है इसके बारे में इस इकाई में चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है. क्योंकि इसके बारे में आप विस्तार से अन्य इकाइयों में पढ़ चुके हैं। हम इस इकाई में खासतौर पर संस्कृति के बारे में अध्ययन करेंगे। संस्कृति क्या है और जनसंचार के संदर्भ में संस्कृति के किन–किन पहलुओं पर विचार करने की आवश्यकता है इसके बारे में भी आप

इकाई में अध्ययन करेंगे। जनसंचार के बारे में बात करते हुए उसके तकनीकी, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर विचार करना जितना जरूरी ह उससे कम जरूरी नहीं है उसके सांस्कृतिक पहलुओं के बारे में विचार करना।

जनसंचार के विकास का संबंध सांस्कृतिक विकास से बहुत गहरा है इसे प्रायः भुला दिया जाता है। उदाहरण के लिए जनसंचार का सबसे प्रभावी और प्राचीन रूप भाषा है।

लेकिन भाषा सांस्कृतिक आदान–प्रदान का भी एक सशक्त माध्यम है। कोई भाषा कितनी विकसित है इससे इस बात का भी पता लगता है कि वह समाज सांस्कृतिक रूप से कितना विकसित है। भाषा में ठहराव या जड़ता तभी आती है जब वह नए माहौल और नयी चुनौतियों को व्यक्त करने के लिए तैयार नहीं होती। उसमें दूसरी भाषाओं से ग्रहण करने और नये भावबोध और विचारबोध को व्यक्त करने की कितनी क्षमता है। यही बात जनसंचार के बारे में भी लागू होती है। किसी देश में यह मुमकिन है कि जनसंचार के नवीनतम संसाधन मौजूद हों लेकिन उसके बावजूद वह देश सांस्कृतिक दृष्टि से दरिद्र हो। इसलिए जनसंचार के विकास का सांस्कृतिक विकास से रैखिक संबंध नहीं है। दरअसल इनके बीच का संबंध जटिल किस्म का है और उसका अध्ययन सावधानी से करने की जरूरत है। इस इकाई में इस बात को ध्यान में रखकर जनसंचार एवं संस्कृति के अंतःसंबंधों पर विचार किया गया है।

4.2 संस्कृति की संकल्पना

संस्कृति को परिभाषित करना आसान नहीं है। आमतौर पर संस्कृति का मतलब यह समझा जाता है कि संस्कृति साहित्य और कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट रचनात्मकता और उपलब्धियों का नाम है। अंग्रेजी में यह शब्द 'कल्टिवेट' से निःसृत हुआ है जिसका मतलब होता है, खेती करना या जोतना। इस प्रकार संस्कृति के अंग्रेजी पर्याय कल्चर का संबंध कृषि से जुड़ता है। हिंदी में संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है और इसमें संस्कार का भाव निहित होता है। संस्कार का मतलब ऐसे भाव से होता है जो मनुष्य परंपरा से अर्जित कर उसे परिष्कृत रूप में अपने मानस में बैठा लेता है और उसके व्यवहार को ये संस्कार काफी हद तक निर्धारित करते हैं। इस तरह विचार करने पर कल्चर और संस्कृति अपने मूल में एक ही तरह के अर्थ को व्यक्त करते प्रतीत होते हैं। संस्कृति इस अर्थ में उन सब बातों से जुड़ जाती है जिससे मनुष्य के मनुष्य होने की पहचान होती है। संस्कृति शब्द के विकास और प्रयोग का संबंध समाज, सामाजिक परिवर्तन और आदर्श समाज के बारे में लोगों के विश्वासों और मूल्यों से होता है (कल्चर एंड सोसाइटी)। चूँकि सभी समाज एक से नहीं होते, न ही आदर्श समाज की संकल्पना सभी की एक सी होती है और न ही सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सभी समाजों में एक साथ और एक–सी घटित होती है इसलिए संस्कृति का स्वरूप भी सभी समाजों में और सभी समय में एक–सा नहीं होता।

आधुनिक समाजों का अध्ययन हमें बताता है कि मानव जाति का विकास प्राणी जगत के विकास के अंग के रूप में हुआ है। लेकिन दूसरे प्राणियों से मानव व्यवहार का मूलभूत अंतर यही है कि उसका विकास केवल जैविक रूप से ही नहीं

हुआ है बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में भी हुआ है। मनुष्य समाज में रहकर ही संस्कृति को सीखता और संप्रेषित करता है। मनुष्य में यह क्षमता होती है कि वह अकेले और समूह में प्रतीकों का निर्माण कर सकता है और प्रतीकों के माध्यम से संप्रेषित कर सकता है। प्रतीकों के निर्माण और उसके संप्रेषण के जरिए ही व्यक्ति संस्कृति का विकास करता है। संप्रेषण की क्षमता तो सभी प्राणियों में होती है लेकिन संकेतों के माध्यम से संप्रेषण की क्षमता सिर्फ मनुष्य में होती है। प्रतीकों के प्रयोग के जरिए मनुष्य वस्तुओं, विचारों और संबंधों पर अपने अर्थ और मूल्य आरोपित करता है (कल्चर एंड सोसाइटी)। इसी प्रक्रिया में संस्कृति के विभिन्न रूप हमारे सामने आते हैं।

समाज और संस्कृति के इन अंतःसंबंधों को समझते हुए हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र से संबंध रखती है। संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जीवन और जीवन से जुड़ी गतिविधियों से काटकर देखा या समझा जा सकता है। वह मनष्य जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में समाहित है। मनुष्य का पहनना–ओढना, सोचना–विचारना, बोलना–लिखना, कौन–सा ऐसा कार्य है जिसमें संस्कृति नहीं होती या जिससे संस्कृति का निर्माण नहीं होता। प्रत्येक जातीय समुदाय की अपनी लंबी सांस्कृतिक परंपरा होती है। उसी परंपरा से उसकी संस्कृति का विशिष्ट स्वरूप बनता है। लेकिन यह निर्माण न तो एकाकी होता है और न ही एक आयामी रूप में। यह उस समुदाय के सामूहिक प्रयत्नों की अभिव्यक्ति होता है जो स्वयं निरंतर विकसित होती हुई संस्कृति को भी विकसित करती है। लेकिन ऐसा करते हुए वह दूसरे जातीय समुदायों के संपर्क में भी आती है और इस प्रक्रिया में उनसे रिश्ता बनाते हुए अपनी संस्कृति में उनके प्रभावों को ग्रहण भी करती है और उन समुदायों पर अपना प्रभाव भी छोड़ती है। संस्कृति के निर्माण की सतत प्रवाहमान प्रक्रिया है, जिसमें वह निरंतर कुछ पुराना छोड़ती और नया ग्रहण करती हुई चलती है। (संस्कृति और समीक्षा के सवाल)।

संस्कृति के बारे में जब हम विचार करते हैं तो हम वस्तुतः मानव व्यवहार के बारे में बात कर रहे होते हैं। हमारा सामाजिक जीवन उसी तरह नहीं घटित होता जिस तरह प्राकृतिक जगत में वस्तुएँ और घटनाएँ घटित होती हैं। मनुष्य जीवन में विभिन्न प्रकार के उदगार, प्रतीक, पाठ और कला संबंधी गतिविधियाँ और अभिव्यक्तियाँ होती हैं वे अर्थवान होती हैं। मनुष्य उन्हें रचता है, रचे हुए को समझने की कोशिश करता है और रचने और ग्रहण करने की प्रक्रिया में उनकी व्याख्या भी करता है (आइडियोलोजी एंड मोडर्न कल्चर पृ. 122)। यदि इस बात को हम दृष्टि में रखते हैं तो समझ सकते हैं कि संस्कृति का क्षेत्र देश और काल दोनों रूपों में असीमित है। कई बार संस्कृति को सभ्यता के साथ एकमेव कर दिया जाता है। अठारहवीं–उन्नीसवीं सदी के जर्मन दार्शनिकों और इतिहासकारों ने पहली बार संस्कृति को सभ्यता से भिन्न रूप में परिभाषित किया। संस्कृति को इन्होंने ऐसी प्रक्रिया के रूपों में देखा जिसका कई मामलों में बौद्धिक या आत्मिक प्रक्रिया के विकास से संबंध था। इस अवधारणा को संस्कृति की क्लासिकल अवधारणा नाम दिया गया (वही, पृ. 123)। इसी अवधारणा को बाद के नृशास्त्रियों ने एक विशिष्ट समाज या ऐतिहासिक कालखंड में विश्वासों, रिवाजों, परंपराओं, आदतों और व्यवहारों के लक्षणों की विविध व्यवस्थाओं से जोड़कर देखा। जॉन बी. थांपसन ने इसे संस्कृति की वर्णनात्मक अवधारणा नाम दिया है। इससे भिन्न वे संस्कृति की प्रतीकात्मक अवधारणा का भी उल्लेख करते हैं। इस अवधारणा के

अनुसार प्रतीकात्मक परिघटना एक सांस्कृतिक परिघटना है। इस अवधारणा के अनुसार संस्कृति का अध्ययन अनिवार्य रूप से प्रतीकों और प्रतीकात्मक गतिविधि की व्याख्या के साथ जुड़ा है (वही, पृ. 123)। संस्कृति की चौथी अवधारणा को थांपसन ने संरचनात्मक अवधारणा नाम दिया है। इस अवधारणा के अनुसार सांस्कृतिक अवधारणा को संरचनात्मक संदर्भो में प्रतीकात्मक रूपों के रूप में समझा जा सकता है। इसके अनुसार सांस्कृतिक विश्लेषण को प्रतीकात्मक रूपों के सामाजिक संदर्भ और अर्थपूर्ण संघटन के अध्ययन के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है (वही, पृ. 123)। इस प्रकार संस्कृति का अवधारणा को समझने की चार पद्धतियाँ मानी जा सकती हैं :

1) संस्कृति की क्लासिकल अवधारणा,

2) संस्कृति की वर्णनात्मक अवधारणा,

3) संस्कृति की प्रतीकात्मक अवधारणा, और

4) संस्कृति की संरचनात्मक अवधारणा।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि संस्कृति की अवधारणा पर विचार की शुरुआत सभ्यता के अर्थ में हुई थी। पहली बार संस्कृति की अवधारणा को सभ्यता से अलग अर्थ में ग्रहण करने की शुरुआत उन्नीसवीं सदी में हुई थी। सभ्यता जिसे अंगेजी में 'सिविलाइजेशन' कहा जाता है, उसका अर्थ है जिसका संबंध नागरिकों से है। अठाहरवीं सदी के उत्तरार्द्ध में सभ्यता को इंगलैंड और फ्रांस में ऐसी प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया गया जो मानव विकास की प्रगतिशील प्रक्रिया को बताता है। जो मानव जाति को बर्बरता और पाशविकता से दूर परिष्कार और व्यवस्था की ओर ले जाए (वही, पृ. 124)। आमतौर पर सभ्यता और संस्कृति को एक–दूसरे के पर्याय के रूप में समझा जाता है लेकिन इतना तो लगभग माना ही जाता था कि इन दोनों का संबंध मानव विकास से है और आधुनिक युग में ज्ञानोदय (एनलाइटनमेंट) के प्रभाव में मानवजाति निश्चय ही एक प्रगतिशील दिशा की ओर आगे बढ़ रही है। जर्मनी में हालांकि ये शब्द कई बार विपरीत अर्थ में भी प्रयुक्त होते रहे हैं। जर्मनी में सभ्यता का नकारात्मक अर्थ लिया जाता है जबकि संस्कृति का सकारात्मक। इसके अनुसार, सभ्यता का संबंध आचरण की विनम्रता और परिष्कार से है जबकि संस्कृति का संबंध उन बौद्धिक, कलात्मक और आत्मिक उत्पादों से हैं जिनमें लोगों की वैयक्तिकता और रचनात्मकता अभिव्यक्त होती है (वही, पृ. 124)।

सभ्यता और संस्कृति के बारे में जब बात करते हैं तो आमतौर पर यह समझ लिया जाता है कि कुछ समाज दूसरे समाजों से ज्यादा 'सभ्य' और 'संस्कृत' होते हैं। इसी तरह ऐतिहासिक रूप से भी सभ्यता और संस्कृति के बारे में दो तरह की अवधारणा मिलती है। एक तो यह कि पहले मनुष्य ज्यादा सभ्य और सुंस्कृत था और अब वह धीरे धीरे पतन की ओर जा रहा है। दूसरी धारणा यह है कि मनुष्य अधिक सभ्य और अधिक सुसंस्कृत हो रहा है। इस दूसरी अवधारणा के पीछे ऐसी वैज्ञानिक समझ भी काम करती है लेकिन इसे भी यांत्रिक रूप से स्वीकार कर लेना मिथ्या है। यह सही है कि मानव आचरण के कई रूपों में लगातार परिवर्तन होते हैं लेकिन इन आचरणों में हमेशा श्रेणीबद्धता या सभ्यता और असभ्यता को देखना ज्यादती होगी। मसलन, लड़कियों द्वारा जीन्स पहनना या सलवार कुर्ता पहनने में दो पंरपराओं का फर्क तो है लेकिन इसमें से एक को नैतिक और दूसरे को

अनैतिक मानना न तो सभ्यता से संबंध रखता है और न ही संस्कृति से। लेकिन इसके विपरीत स्त्री को पर्दे में रखने की प्रथा के मुकाबले पर्दा प्रथा का खत्म होना निश्चय ही अधिक सभ्य भी है और संस्कृत भी। इससे यह भी जाहिर होता है कि समाज में प्रचलित बहुत से रीति–रिवाज चाहे उन्हे परंपरा का समर्थन प्राप्त हो जरूरी नहीं कि वे संस्कृति के व्यापक अर्थ में उपयुक्त भी माने जाएँ। संस्कृति की विभिन्नताओं को उनकी विशिष्टताओं के संदर्भ में तो देखा ही जाना चाहिए साथ ही उन मूल्यों के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए जो लिंग, जाति, धर्म, नस्ल, क्षेत्र और भाषा के अंतर के बावजूद सभी पर समान रूप से लागू किए जा सकते हैं। कोई भी समाज यह कहकर अपने एक हिस्से के नागरिक अधिकारों को नहीं छीन सकता कि वह उसके समाज की परंपरा के अनुरूप है या नहीं है। इसी तरह संस्कृति के क्षेत्र में यह प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है कि जो समाज या देश दूसरों की तुलना में आर्थिक और राजनीतिक रूप से ज्यादा सशक्त होते हैं वे अपने को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी ज्यादा उन्नत मानने लगते हैं। यही नहीं वे समाज या देश जो आर्थिक और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली देशों या समाजों पर निर्भर होने को विवश हो जाते हैं, वे अपने को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से दरिद्र और पिछड़ा भी मानने लगते हैं। अमरीका की श्रेष्ठता का मिथक संस्कृति की इस भ्रामक धारणा पर अवलंबित है।

संस्कृति के क्षेत्र क्षेत्र में इन विरोधाभासों का परिणाम यह होता है कि एक ही समाज के कई रूप हमारे सामने आते हैं। मसलन, हम अभिजात संस्कृति, जाति, लोकप्रिय संस्कृति, बुर्जुआ संस्कृति, सर्वहारा संस्कृति, भारतीय संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति, प्राचीन संस्कृति आदि की बातें करने लगते हैं। संस्कृति के और भी कई रूपों की बात जोड़ी जा सकती है लेकिन सवाल यह है कि इससे हमें क्या स्थिति को समझने में मदद मिलती है? संस्कृति को लेकर इस तरह की समस्याएँ उठती हैं क्योंकि प्रायः मानव आचरण के किसी एक पहलू को दूसरे के बदले ज्यादा महत्वपूर्ण मान लिया जाता है। यदि हम इस बात को महत्व दंगे कि भारतीय संस्कृति में परिवार की अवधारणा का अधिक महत्व है इसलिए भारतीयों को संयुक्त परिवार की ओर वापस लौटना चाहिए तो हम समाज परिवर्तन की स्वाभाविक स्थिति कोई अस्वीकार कर रहे होंगे। इसी तरह यह समझना कि औरतों को पद में रखकर या उसे शिक्षा से वंचित करके केई समाज अपनी संस्कृति की रक्षा कर रहा है तो हकीकत में वह अपने समाज में स्त्रियों के अधिकारों को कुचलने का काम कर रहा है। संस्कृति का हिस्सा वे जनतांत्रिक अधिकार भी हैं जो मानव जाति ने कड़े संघर्ष के बाद अर्जित किए हैं। बराबरी का सिद्धांत भी संस्कृति का ही एक हिस्सा है जिसके अनुसार सभी मनुष्य एक समान हैं और उनमें भेदभाव करना अनैतिक है इसलिए असंस्कृत भी है।

4.3 जनसंचार और संस्कृति का अंतःसंबंध

संस्कृति के संदर्भ में हमने प्रतीकात्मक रूपों का उल्लेख किया था। जॉन बी. थांपसन के अनुसार, 'आधुनिक समाजों में प्रतीकात्मक रूपों के उत्पादन और प्रसार को मीडिया उद्योग की गतिविधियों से अलग नहीं किया जा सकता। मीडिया संस्थानों की भूमिका आधारभूत है और उनके उत्पादकों का दैनंदिन जीवन से व्यापक संबंध देखा जा सकता है। इसलिए इस बात की कल्पना करना मुश्किल है कि आज हम ऐसा जीवन जी सकते हैं जिसमें किताबें न हो, अखबार न हो, रेडियो

और टेलीविजन न हो और दूसरे कई अनगिनत माध्यम न हों जिनके माध्यम से हमारे सामने रोजाना लगातार प्रतीकात्मक रूप पेश होते रहते हैं। हर दिन और हर सप्ताह अखबार, रेडियो और टेलीविजन हमारे सामने उन घटनाओं से संबंधित शब्दों, बिंबों, सूचनाओं और विचारों को प्रवाहित करते रहते हैं जो हमारे निकटस्थ सामाजिक परिवेश के परे घटित होते हैं। फिल्म और टेलीविजन कार्यक्रमों पर जो दृश्य दिखाए जाते हैं वे उन लाखों–लाख व्यक्तियों के लिए एक समान संदर्भ बन जाते हैं जिनका एक–दूसरे से कोई संपर्क नहीं होता लेकिन जो एक मध्यस्थ संस्कृति में भाग लेकर एक समान अनुभव, एक सामूहिक स्मृति के भागीदार बन जाते हैं (वही, पृ. 163)।' थांपसन के अनुसार, जनसंचार ने उन हजारों साल पुराने रूपों को भी लोगों तक पहुँचाया है जिनको इससे पहले कभी इतने बड़े पैमाने पर उपलब्ध कराना मुमकिन नहीं हो सका था। हमारे सामने रामायण और महाभारत का उदहारण मौजूद है जिनको टेलीविजन सीरियल के कारण करोड़ों लोगों तक पहुँचाया जा सका। इनमें से ज्यादातर लोगों को शायद ही इन महाकाव्यों को पढ़ने का मौका मिल पाता।

जनसंचार के माध्यम से जो संदेश प्रसारित होते हैं वे सिर्फ संदेश ही नहीं होते सास्कृतिक संदेश होते हैं और उनका संप्रेषण सांस्कृतिक संप्रेषण के रूप में होता है। यह सांस्कृतिक संप्रेषण प्रतीकात्मक रूपों के माध्यम से होता है। इसलिए जनसंचार और संस्कृति के अंतःसंबंधों को समझने के लिए इन प्रतीकात्मक रूपों को समझना जरूरी है। प्रतीकात्मक रूप एक सामाजिक परिघटना है। प्रतीक प्रतीक के रूप में संप्रेषित होने के योग्य तभी समझे जा सकते हैं जब उन प्रतीकों को उस समाज के सारे लोग भी समझ सकते हैं। ऐसा कोई प्रतीक जिसका किसी व्यक्ति द्वारा उपयोग किया जाता है और जिसे किसी अन्य द्वारा नहीं समझा जा सकता तो उसका संप्रेषण भी संभव नहीं है। इसलिए विद्वान प्रतीकात्मक रूपों को सामाजिक परिघटना मानते हैं। सांस्कृतिक संप्रेषण भी संभव नहीं है। सांस्कृतिक संप्रेषण के तीन पहलुओं का उल्लेख जॉन बी. थांपसन ने किया है : 1) संप्रेषण का तकनीकी माध्यम, 2) संप्रेषण के संस्थागत साधन, और 3) संप्रेषण में शामिल देश–काल अंतराल। प्रतीकात्मक रूपों के विनिमय में ये तीनों पहलू अलग–अलग ढंग से और अलग–अलग स्तरों पर जरूर शामिल होते हैं। जनसंचार का जैसे–जैसे विकास होता है इन पहलुओं के साथ नए–नए रूप जुड़ते जाते हैं और उनको नया महत्व मिलता जाता है। वे अलग–अलग रूपों में प्रतीकात्मक रूपों के निर्माण, उपभोगीकरण और प्रसार का विस्तार करने में भूमिका निभाते हैं (वही, पृ. 165)।

संचार का तकनीकी माध्यम प्रतीकात्मक रूपों का आधार होता है। संचार के भौतिक घटक ही प्रतीकात्मक रूपों के निर्माण और संप्रेषण को संभव बनाते हैं। मसलन, लिखने के लिए कागज और कलम की जरूरत होती है जबकि रेडियो के लिए रेडियो नामक उपकरण के साथ–साथ रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का निर्माण और प्रसारण करने वाले यंत्रों की भी जरूरत होती है जो रेडियो स्टेशन पर लगे होते हैं। यही बात दूसरे माध्यमों पर भी लागू होती है। बिना इन भौतिक साधनों के संचार संभव नहीं है। संचार के तकनीकी साधन कई कार्यों को संपन्न करते हैं। वे प्रतीकात्म्क रूपों का निर्माण करते हैं। उनको ग्रहीता तक संप्रेषित करते हैं, उनका भंडारण करते हैं और उनका पुनरुत्पादन करते हैं या उनकी

प्रतिलिपियाँ तैयार करते हैं। इसलिए तकनीकी साधनों की भूमिका संप्रेषण में बहुत महत्वपूर्ण होती हैं, इसे याद रखने की जरूरत है।

संचार के ये तकनीकी माध्यम भागीदारी की प्रकृति और व्यापकता को भी तय करते हैं। अलग–अलग मीडिया का उपयोग करने में व्यक्ति को अलग–अलग क्षमताओं का प्रयोग करना पड़ता है। यानी उन प्रतीकात्मक रूपों में निहित संकेतों को विसंकेतीकरण करने में अलग–अलग तरह के माध्यम अलग–अलग तरह की क्षमताओ और कौशलों की मांग करते हैं। मसलन, प्रिंट मीडिया में लिखित भाषा का प्रतीकात्मक रूपों के रूप में इस्तेमाल होता है जबकि रेडियो में उच्चरित भाषा और ध्वनियों का प्रयोग होता है। टेलीविजन में दृश्य रूपों की भूमिका केंद्रीय होती है। टेलीविजन और सिनेमा में दृश्य रूप की भिन्नता सूक्ष्म स्तर की होती है। लेकिन इसकी जानकारी के बिना इन माध्यमों का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से नहीं किया जा सकता है।

प्रतीकात्मक रूपों के विनिमय में प्रायः संप्रेषण के संस्थागत साधन शामिल होते हैं। जनसंचार के संस्थानीकरण का मतलब है, सांस्कृतिक उत्पाद का संगठन और इनसे जुड़े लोगों की भूमिका का स्पष्ट निर्धारण। आमतौर पर इसे सांस्कृतिक उत्पाद के बाहरी कारक के रूप में देखा जाता है और उत्पादन के ऊपर पड़ने वाले इसके प्रभाव को कम करके आंका जाता है। इसे साहित्य के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। किसी कवि के लिए कविता लिखना एक ऐसा काम है जिसके लिए उसे किसी बाहरी संगठन से जुड़ना जरूरी नहीं है। भाषा की जानकारी और कागज कलम के सहारे से वह आसानी से कविता लिख सकता है। वह लोगों के बीच जाकर अपनी कविता सुना सकता है, उसे किसी दूसरे माध्यम की जरूरत नहीं है। लेकिन ऐसे में उसकी कविता बहुत कम लोगों तक पहुंच सकेगी। इस प्रकार उसका कविता लिखना जनसंचार का माध्यम नहीं बन सकेगा। इसके लिए उसे कुछ दूसरे सहारे लेने होंगे। मसलन, अपनी कविताओं को पर पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाना या उनकी पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना। जैसे ही कवि इस तरह के माध्यमों का सहारा लेता है, तो मामला उसके और पाठकों तक ही सीमित नहीं रहता। इसके बीच, कुछ और एजेंसियाँ आ जाती हैं। संपादक, प्रकाशक, वितरक, दुकानदार होकर आदि। संस्थानीकरण एक अनिवार्य प्रक्रिया है। इसके कारण प्रतीकात्मक रूपों के निर्माण और संप्रेषण तक ही प्रक्रिया का व्यवस्थित ढांचा बन जाता है। लेकिन इसका नकारात्मक पहलू यह है कि संप्रेषित किया जाने वाला संदेश कौन सा हो, किस रूप में हो और किन तक संप्रेषित हो इसका निर्धारण भी व्यवसाय और संस्थान की जरूरत के अनुसार होने लगता है (जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, प. 63)। लेकिन जनसंचार के संस्थानीकरण की यह प्रक्रिया समाज व्यवस्था के एक हिस्से के रूप में होती है इसलिए सामाजिक व्यवस्था में जनसंचार अपनी एक जगह बना लेता है।

सांस्कृतिक संप्रेषण का तीसरा पहलू संचार में शामिल देशकाल अंतराल है। संचार की कोई भी गतिविधि देशकाल में घटित होती है लेकिन जिस देशकाल में वह घटित होती है वह वहीं तक सीमित नहीं रहती। अलग–अलग माध्यमों में वह उस संदर्भ में अलग अलग स्तरों पर विलग हो जाती है। मसलन, जब हम किसी फिल्म का गाना सुनते हैं जो आज से बीस, तीस या चालीस साल पहले गाया गया था तो वह अपने गाए जाने वाले समय से एक अंतराल पैदा कर चुका है। यही नहीं

वह जिस तरह गाया गया था उससे भी अपना संबंध छोड़ चुका है। इसी प्रकार जब रेडियो पर समाचार सुनते हैं जो उसी समय दिल्ली में पढ़ा जा रहा है और किसी अन्य शहर में सुना जा रहा है तो यह संचार ही है जिसने यह संभव बनाया है कि वह समाचार सैंकड़ों मील की यात्रा करता हुआ दूसरे स्थान पर बैठे हुए लोगों तक पहुँच कर संप्रेषित हो रहा है। संप्रेषण के उत्पादन पर इस प्रक्रिया का गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि समाचारों की एक ही अवधि में हजारों मील साथ–साथ सुना जाना संभव है तो इसका मतलब यह है कि हजारों मील में फैले हुए लोगों के बीच समान अभिरुचि वाले समाचारों का प्रसारण एक सामान्य संप्रेषण प्रक्रिया का रूप धारण कर लेगा। इसी को जॉन बी. थांपसन प्रतीकात्मक रूपों के देश–काल में 'उपलब्धता का विस्तार' नाम देते हैं (आइडियोलॉजी ऐंड मॉडर्न कल्चर, पृ. 169)। जाहिर है कि यह 'उपलब्धता का विस्तार' जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं माध्यम की तकनीकी विशिष्टता और उससे जुड़े संस्थानों के स्वरूप पर निर्भर करेगा।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि जनसंचार माध्यमों के द्वारा जो संदेश संप्रेषित होते हैं उनका सबंध संस्कृति के क्षेत्र से होता है। संस्कृति को ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो हमारे सामाजिक अनुभवों को अर्थ देती है और जिससे अर्थ निःसृत होता है। संस्कृति को परिभाषित करते हुए हमने कहा था कि वह मानव गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त होती है। संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जीवन और जीवन से जुड़ी गतिविधियों से काटकर देखा जा सकता है। जेम्स केरी ने ठीक ही कहा है कि सामाजिक जीवन सत्ता और व्यापार से ज्यादा बड़ी चीज है। इसमें हमारे सौंदर्यबोधीय अनुभव, धार्मिक विचार, निजी मूल्य और संवेदनाएँ और बौद्धिक विमर्श शामिल होते हैं। संस्कृति वस्तुतः एक प्रक्रिया है, लेकिन ऐसी प्रक्रिया जिसे मनुष्य दूसरे मनुष्यों के साथ भागीदार बनकर अर्जित करता है। संस्कृति अपने को कई रूपों में व्यक्त करती है और इनमें से जनसंचार माध्यम एक महत्वपूर्ण रूप है। संक्षेप में, कह सकते हैं कि संस्कृति का निर्माण सामूहिक रूप में होता है और वह सामूहिक रूप में ही जावित रहती है। वह अपने को सांकेतिक रूपों में अभिव्यक्त करती है। वह गतिशील और परिवर्तनशील होती है और दिक और काल में संप्रेष्य होती है। वह विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के साथ अंतर्किया करती हुई अपने को व्यवस्थित रूप प्रदान है। यहाँ यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि विभिन्न जातीय समुदायों की. सांस्कृतिक परंपरा होती है और इन जातीय समुदायों से राष्ट्रीय संस्कृति का और समुच्चय से मानव संस्कृति का विकास होता है।

जनसंचार के संदर्भ में सांस्कृतिक प्रश्नों पर विचार कर करते हैं तो कई मुद्दे उभर कर आते हैं। जनसंचार और जनसंस्कति के संबंधों का सवाल भी उठता है। जनसंस्कति लोकप्रिय संस्कृति क्या एक ही है या वे भिन्न–भिन्न हैं। जनसंचार के माध्यम से होने वाले सांस्कृतिक रूपों पर संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव किस रूप में पड़ता है। कभी जनसंचार संस्कृति को उपभोक्ता वस्तु में बदल देता है। भूमंडलीकरण के चलते की सस्कृति के स्थानीय रूपों की पहचान के खत्म होने का खतरा पैदा हो गया है। के उद्योग बनने की प्रक्रिया जनसंचार और संस्कृति के संबंधों पर विचार करने के संदर्भ में कितनी महत्वपूर्ण है और उसका सांस्कृतिक उत्पादों पर किस तरह का असर पड़ता है। जब हम जनसंचार के संदर्भ में संस्कृति की बात करते हैं तो अपसंस्कृति का सवाल भी सामने आता है। साथ ही लिंग,

नस्ल, जाति, अल्पसंख्यक आदि समूहों से संबंधित सवाल भी महत्वपूर्ण बन जाते हैं। इसी इकाई में आगे हम इनसे संबंधित कुछ पहलुओं पर विचार करेंगे।

सांस्कृतिक वर्चस्व का सवाल : जनसंचार और संस्कृति के अंतःसंबंध का एक महत्वपूर्ण पक्ष वर्चस्व के सवाल का है। मीडिया पर शासक वर्ग की विचारधारा का वर्चस्व होता है। यह वर्चस्व आरोपित नहीं होता बल्कि वह इस रूप में मौजूद होता है कि जैसे वह अत्यंत स्वाभाविक, सर्वस्वीकृत और आम अनुभव का हिस्सा है। उसके प्रति आम सहमति कायम हुई प्रतीत होती है। यह विचारधारात्मक वर्चस्व का सिद्धांत मूल रूप में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित है और बौद्धिक विमर्श के संदर्भ में इसे व्याख्यायित करने का काम इटली के प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक एंतोनियो ग्राम्सी ने प्रस्तुत किया है। वर्चस्व में यह निहित होता है कि जो भी यथास्थिति का विरोध करता है वह एक तरह का विरोध और विचलन है। जनसंचार यथार्थ को अपने ढंग से परिभाषित नहीं करता बल्कि वह सत्ता द्वारा दी गई परिभाषाओं को ही प्राथमिकता देता है। वर्चस्व के विचार को आगे विकसित करते हुए मीडिया विशेषज्ञ स्टुअर्ट हाल इसको तीन रूपों में प्रस्तुत करते हैं : पहला सत्ता के साथ जुड़ा वर्चस्ववादी संकेत, दूसरा समझौतापरस्त संकेत जो अनिवार्यतः मीडिया का अपना संकेत है जो उसकी भूमिका को सूचना के निष्पक्ष और व्यावसायिक वाहक के रूप में प्रस्तुत करता है। तीसरा विपक्षी संकेत है जो उनको प्राप्य होता है जो इस बात का चुनाव करते हैं या परिस्थितियाँ उन्हें इस दिशा में ले जाती हैं कि वे यथार्थ के बारे में संदेशों को भिन्न दृष्टि से देखें और घटनाओं के सरकारी अर्थों में निहित वास्तविक अर्थ को पढ़ने का प्रयास करें। यह मॉडल विचारधारा को जिस रूप में भेजा जाता है उसी रूप में उसे ग्रहण नहीं करता। जनसंचार के संदर्भ में इस वर्चस्व को समझना इसलिए जरूरी है कि इसी से हम सांस्कृतिक रूपों के प्रभाव की व्यापकता और दीर्घकालीनता को भी समझ सकते हैं।

4.4 भारत में जनसंचार की परंपरा

माता के आरंभ से ही संदेशों को एक–दूसरे तक पहुँचाने और अपने विचारा . अनुभवों को भंडारित करने की जरूरत मानव जाति को महसस हई होगी ताकि वे अपन ज्ञान की साझेदारी न सिर्फ अपने बंधु–बांधवों के साथ कर सकें बल्कि उनको आगे आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुंचा सकें। अगर हम पाषाण यग पर विचार करें तो हम पाते है कि उस युग के लोगों के पास अपनी भावनाएँ और विचार दूसरे तक पहुँचाने के लिए विकसित भाषा नहीं थी, कुछ ध्वनियां थीं, जो काफी हद तक जानवरों की ध्वनियों मिलती–जुलती रही होगी। इसके साथ ही पत्थर के औजार थे और जिसे वे आन ही पीढ़ियों के लिए छोड़ गए और जिसके आधार पर हम यह कहने की स्थिति म ह कि पाषाण युग के लोगों का जीवन शिकार और रहने की जगह की तलाश में बीतता था। वे ध्वनियों जो आरंभ में पशुओं की ध्वनियों से मिलती–जुलती थीं, उसी से आरंभिक गानो का निर्माण हुआ होगा जो एक समुदाय के लोगों के बीच संदेशों के संप्रेषण का शम बना। (दि एज ऑफ एन्फोर्मेशन, स्टीफन सेक्सबी, मेकमिलन, लंदन, 1990)

पाषाण युग की समाप्ति तक इस में बढ़ोत्तरी हुई होगी। लेकिन सूचनाओं का अंडारित करने का पहला प्रयास चित्रकला के द्वारा हुआ, जिन्हें हम गुफा चित्र के नाम से जानते हैं और जिसके उदहारण हमें पाषाणकालीन गुफाओं में अंकित चित्रों

से मिलत हैं। इन गुफा चित्रों के सबसे पुराने उदाहरण हमें दो हजार वर्ष ई.पू. के भी मिलते हैं। इन चित्रों को देखने से अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय के लोगों की जिंदगी किस तरह की थी। आमतौर पर इनमें शिकार करते हुए लोगों के चित्र बनाए गए हैं जो यह बताते हैं कि गुफाओं में रहने वाले पाषाणकालीन लोगों का जीवन किस तरह का था। गुफाओं में चित्र बनाने की यह कोशिश अपने अनुभव को दूसरों तक पहुँचाने की कोशिश थी। (वही, पृ. 41–42) खास ध्वनियों का इस्तेमाल करते हुए अपने साथियों तक संदेश पहुँचाना, चित्र बनाना और औजारों का प्रयोग पाषाणकालीन संचार प्रौद्योगिकी के उदाहरण हैं। गुफा चित्रों से किसी घटना का विस्तार से चित्रण करना यह एक बहुत बड़ी सफलता थी। यह एक तरह से 'स्मृति को पढ़ना' (रीड ऑन मेमोरी) का पहला उदाहरण था। जहाँ पहले घटी घटना को स्मृति के रूप में सुरक्षित रखने के लिए चित्रों का इस्तेमाल किया गया था। भारत में दक्षिण की नदी घाटियों की गुफाओं में मिले चित्रों में इस सभ्यता के अवशेष मिले हैं। इस नयी खोज के बावजूद सूचना के संप्रेषण के लिए चित्रकला पूर्ण प्रौद्योगिकी नहीं थी। बहुत बड़े स्थान में अनुभव को चित्र के द्वारा पेश किए जाने के बावजूद उसमें व्यक्त संदेश काफी सीमित होता था। इसलिए यह जरूरी था कि किसी ऐसी प्रौद्योगिकी की खोज हो जिसके द्वारा संदेशों को ज्यादा विस्तार से और अधिक सही रूप में प्रस्तुत किया जा सके। लिखना इसी दिशा में उठाया गया क्रांतिकारी कदम था। (वही, पृ. 42) लिखित भाषा का विकास सूचना के संप्रेषण और भंडारण के क्षेत्र में बहुत बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। गुफा की दीवारों पर बनाए गए चित्रों की परंपरा का विकास बाद में अभिव्यक्ति के लिए लकड़ी, पत्थर और दूसरी अपेक्षाकृत कम टिकाऊ चीजों पर भावांकन के रूप में हुआ। इन्हीं से लिखित भाषा का विकास हुआ होगा जिसे हम लिपि कहते हैं, उसे आधुनिक रूपों तक पहुँचने में काफी समय लगा। चित्रों से चित्राक्षरों और उससे कीलाक्षरों से आधुनिक वर्णों तक की यात्रा जिससे हम आज परिचित हैं, एक तरह से सूचना टेक्नोलॉजी के विकास की ही कहानी है। भारत और दूसरे प्राचीन सभ्यता वाले देशों में इस विकास के प्रमाण मिलते हैं। पुराने शिलालेखों, लकड़ी, ताड़ आर भोजपत्रों और दूसरे पदार्थों पर सुरक्षित रखे गए प्राचीन ग्रंथों और संदेशों से यह प्रमाण मिलता है कि वर्णमाला का विकास कितना पुराना होगा। मोहनजो–दाडों की खुदाई में जो सिक्के आदि मिले हैं उन पर पाई गई लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। इसी प्रकार भारत में प्रयक्त होने वाली ब्राह्मी लिपि एक विकसित वर्णमाला होने का प्रमाण देती है। इसी ब्राह्मी लिपि से भारत की लगभग सभी लिपियों का विकास हुआ है (जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, पृ. 171–173)।

वर्णमाला भाषा को दोहरे संकेत के रूप में प्रयुक्त करने की तकनीक है। संचार के शक्तिशाली और सनीले उपकरण के पापा र रानी की सपना का बाहुल्य होने की वजा ही है। अगली और विचारों को भाषा गा गा करने की कामना को खते हुए गा गागू किया जाना सामाणिक मा कि लिखने का कोई पैसा आधार को जिस पर लिखना आसान ना हो और जिसे समय तक सुरक्षित रखा जा सके। या काग कागज के द्वारा संगत मा। भारत में शुरू तास और मोजपा पर लिया जाता था और में बांध दिया जाता था। इस तरह की होने के कारण ही उ ण कहा जाता था। पत्थर पर जिस नी के प्रयोग से मार खोरे जाते थे, उसी ने कलम आधुनिक युग में विकास के साथ और भी कई चीजों की खोज हुई। सूचना के प्रेषण के लिए पुराने जमाने में जब डाक व्यवस्था नहीं थी तो लोग उन यात्रियों के साथ अपने

संदेश अपने प्रियजनों तक पहुँचाते थे, जिनका गंतव्य भी वही स्थान होता था, जहाँ उनके प्रियजन रहते थे। यह काम सिर्फ निजी संदेशों तक ही सीमित नहीं था। व्यापार के विकास के साथ कई ऐसे तरीके भी विकसित हुए थे जिन्हें हम आज बैंकिंग के माध्यम से पूरा करते है। मसलन, एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैसा भेजना। जब डाक और बैकिंग व्यवस्था का अभाव था तब व्यापारी हुडी के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैसे का आदान–प्रदान किया करते थे। लेकिन जब व्यापार का विस्तार हुआ और संदेशों के आदान–प्रदान की आवश्यकता पहले से कई गुणा ज्यादा बढ़ गई तो यह जरूरी हो गया कि संचार के नए साधनों का विकास हो। इसी जरुरत ने जनसंचार के नए माध्यमों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

भारत में जनसंचार की परंपरा की कोई बहुत प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत करना मुश्किल है। भाषा जिसे कि जनसंचार का एक प्राचीन और अभी भी सर्वाधिक प्रासंगिक माध्यम माना जाता है, का प्रयोग भारत में बहुत पुराना है, यह ऊपर कहा जा चुका है। भाषा के अलावा जनसंचार के दूसरे साधनों का प्रयोग भी भारत में होता रहा है आगे के उपभागों में हम इस बारे में विचार करेंगे।

भारतीय इतिहास को आमतौर पर तीन कालखंडों में बांटकर देखा जाता है। प्राचीन, मध्य और आधुनिक। प्राचीन काल के अंतर्गत सभ्यता के आरंभिक विकास (पाषाण युग) से लेकर पाँचवीं सदी तक को शामिल किया जाता है। मध्ययुग को अंग्रेजों के आधिपत्य से पूर्व (अठारहवीं सदी के मध्य) तक और आधुनिक युग को अंग्रेजों के आगमन से आज तक माना जाता है। हम यहाँ इतिहास के इन कालखंडों के संदर्भ में जनसंचार के बारे में विचार करेंगे।

4.4.1 प्राचीन काल में जनसंचार

मानव सभ्यता का इतिहास वैसे तो हजारों साल पुराना है लेकिन विधिवत इतिहास लिखने की शुरुआत तभी हुई जब मनुष्य ने भाषा और लिपि का विकास किया। इससे पूर्व के मनुष्य के बारे में जानकारी हमें उस युग के पत्थर के औजारों, गुफा चित्रों आदि से मिलती है। इनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। भारतीय इतिहास की वास्तविक शुरुआत हड़प्पा सभ्यता से होती है। हड़प्पा सभ्यता से जुड़े स्थानों की खुदाई से पुरातत्वविदों को ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे यह मालूम पड़ता है कि ईसा पूर्व चौथी से तीसरी सहस्त्राब्दी में खेतीहर संस्कृतियाँ विद्यमान थीं। हड़प्पा की सभ्यता नगर सभ्यता थी जो विकास की कई मंजिलें पार करने के बाद ही वहाँ तक पहुँची होगी। इससे यह जाहिर होता है कि यह सभ्यता इससे भी प्राचीन रही होगी। हड़प्पा की खुदाई में जो नगर जीवन के लक्षण मिले हैं उनमें महत्वपूर्ण हैं वे मुद्राएँ जिन पर हडप्पाकालीन लिपि में लिखा हुआ है। यद्यपि इसे अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है लेकिन इनसे तीन बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती हैं। एक, हडप्पा सभ्यता के लोगों ने ऐसी भाषा विकसित कर ली थी जिसकी एक विकसित लिपि भी थी। दो, इन मुद्राओं पर अंकित चिह्नों से यह जाहिर होता है कि वे गणित के अंकों से भी परिचित थे और तीन, वे भाषा और गणित का व्यापार सहित बहुत से कार्यों में व्यापक प्रयोग करते थे। हड़प्पा उत्खनन में प्राप्त मुद्राओं और बर्तनों पर तरह–तरह के पशुओं के चित्र भी मिले हैं। विकसित भाषा, गणित का ज्ञान और चित्रों का उपयोग यह बताने के लिए पर्याप्त है कि ये संप्रेषण के माध्यम के

मुख्य साधन थे और मिट्टी के बर्तनों तथा मुद्राओं पर इनका अंकन इसी बात को प्रमाणित करता है।

भाषा का विकास प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। महान वैयाकरण पाणिनी की पुस्तक 'अष्टाध्यायी' जिसकी रचना पाँचवीं सदी ई.पू. मानी जाती है, में इससे पूर्व के कई आचार्यों का उल्लेख किया गया है। यही नहीं इस पुस्तक में उन्होंने कई भाषाओं के बारे में लिखा है जिससे यह भी जाहिर होता है कि वे संस्कृत सहित कई अन्य भाषाओं से परिचित थे। भारत में विभिन्न भाषाई परिवार मौजूद रहे हैं। सम्राट अशोक (ई.पू. तीसरी सदी) के शिलालेख जो ज्यादातर ब्राह्मी लिपि में हैं दुनिया की प्राचीनतम लिपियों में से है। ऋग्वेद जिसका रचना काल ई.पू. एक सहस्त्राब्दी से अधिक माना जाता है, उसमें नाटक के पूर्व रूपों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद का संवाद स्रोत नाटक के पूर्व रूप का प्रमाण देता है। 'अष्टाध्यायी' के रचयिता भी नाटक विधा से परिचित थे। नाटक और कविता साहित्य की ऐसी विधाएँ हैं जिनका विकास भाषा के विकास के साथ आरंभ हो गया था। इन साहित्य रूपों के द्वारा लोग अपने समय और समाज के बारे में अपनी सोच और धारणाओं को रचनात्मक रूप में पेश करते थे और आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित छोड़ जाते थे। आज उस काल की इन रचनाओं से हमें उस दौर के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन की जानकारी मिलती है।

इस दृष्टि से महाभारत और रामायण महाकाव्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। ऐसा माना जाता है कि इनको ई.पू. चौथी शताब्दी से चौथी शताब्दी ई. के बीच लिपिबद्ध किया गया होगा। लेकिन इन महाकाव्यों में शामिल बहुत से प्रसंग इससे भी हजार साल पहले के हो सकते हैं। संप्रेषण के माध्यम के रूप में महाभारत के एक प्रमुख पात्र संजय का उल्लेख यहाँ जरूरी है। महाभारत युद्ध के दौरान संजय अंधे धृतराष्ट्र को उस युद्ध का आँखों देखा हाल सुनाता है। स्वयं संजय युद्ध मैदान में मौजूद नहीं है बल्कि उसे जो दिव्यदृष्टि मिली हुई है उसी के कारण वह यह वर्णन करने में सक्षम होता है। ऐसी दिव्यदृष्टि की परिकल्पना यही बताती है कि उस काल में भी मनुष्य ऐसी किसी शक्ति के बारे में सोचता था जिसके द्वारा वह दूर घट रही घटनाओं की तत्काल जानकारी प्राप्त कर सके। हजारों साल बाद यह शक्ति मनुष्य को रेडियो और टेलीविजन के द्वारा प्राप्त हुई। संदेश भेजने के माध्यम के रूप में भारत में आने–जाने वाले पथिकों के अलावा घुड़सवारों और कबूतर जैसे पक्षियों का प्रयोग किया जाता था। संस्कृत के महाकवि कालिदास के काव्य 'मेघदूत' में यक्ष अपनी पत्नी को बादलों के माध्यम से संदेश भेजता है। जाहिर है यह एक कवि की कल्पना है लेकिन यह इस बात का द्योतक जरूर है कि संदेश का भेजा जाना या प्राप्त करना एक महत्वपूर्ण कार्य था जिसकी कोई सामुदायिक व्यवस्था उपलब्ध नहीं थी।

प्राचीन भारत में शिक्षा और शिक्षा संस्थानों का भी व्यापक प्रसार हुआ था। शिक्षा गुरुकुलों में दी जाती थी जहाँ विद्यार्थी अपने शिक्षक के साथ रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। बाद में कई बसे बड़े शिक्षा संस्थान स्थापित हुए जिनमें दूसरे देशों के विद्यार्थी भी शिक्षा प्राप्त करने आते थे। ऐसे संस्थानों में तक्षशिला और नालंदा का खास स्थान था। इसका अर्थ यह नहीं था कि शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्राप्त थी। महाभारत में एकलव्य की कथा यह

बताती है कि आदिवासी लोगों को यह शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। यही नहीं वह अपने बलबुते कुछ ज्ञान और कौशल हासिल भी कर लेता तो उसको उसकी कीमत चुकानी पड़ती थी। रामायण में शंबूक की कथा भी हमें यही बताती है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी वर्ण व्यवस्था इतनी ही मजबूत और क्रूर थी। राम द्वारा शंबूक की हत्या इसीलिए कर दी गई क्योंकि उसने उन वेदों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया था जिसे प्राप्त करने से 'शूद्रों' और स्त्रियों को वंचित कर दिया गया । बौद्ध और जैन धर्मों का उत्थान इसी तरह के भेदभाव के कारण हुआ था जिन्होंने वर्ण व्यवस्था का विरोध किया था। लेकिन बौद्ध धर्म के पतन होने के बाद जब दुबारा ब्राह्मण धर्म स्थापित हो गया तो भारत एक बार फिर शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ने लगा। ।

संचार के कुछ साधनों का प्रयोग राजा प्रजा तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए करते थे। इनमें वे मुनादी प्रमुख होते थे जो गली–गली, मुहल्ले–मुहल्ले जाकर सजा के फरमान को पढ़कर सुनाते थे। इसके लिए वे ढोल और नगाड़ों का इस्तेमाल करते थे। जिनको सुनकर लोग एकत्र होते थे। इसी तरह नगाड़ों का उपयोग दूर के स्थानों तक कुछ खास संदेशों का प्रेषण करने के लिए किया जाता था। यह प्रक्रिया मध्ययुग में भी जारी रही।

4.4.2 मध्य काल में जनंसचार

मध्यकाल में जनसंचार के विकास में कोई उल्लेखनीय बदलाव नहीं आया। मध्ययुग में पश्चिम और मध्य एशिया से जो जातियाँ भारत में आई उन्होंने यहाँ की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में कोई खास बदलाव नहीं किया। पहले की तरह शिक्षा अभी भी समाज के उच्च वर्गों और उच्च वर्णों तक ही सीमित थी। संचार के साधन पहले की तरह घुड़सवारों और पक्षियों के द्वारा ही उपलब्ध थे। आमतौर पर आम आदमी आने जाने वाले लोगों के जरिए ही अपने संदेश अपने संबंधियों और परिचितों तक भिजवाते थे। संचार का पहला सार्वजनिक प्रयास शेरशाह सूरी (1540–45) के समय में हुआ जिसने पहली बार डाक व्यवस्था की शुरुआत की। शेरशाह को इस बात का भी श्रेय जाता है कि उसने बंगाल से पेशावर तक लंबे सड़क मार्ग का निर्माण करवाया ताकि भारत को पूर्व से पश्चिम के छोर तक जोड़ा जा सके। जाहिर है कि इस तरह के सड़क मार्गों के निर्माण से सिर्फ यातायात में ही सुविधा नहीं होती है बल्कि संचार में भी सुविधा होती मध्ययुग में साहित्य की किसी नई विधा का जन्म तो नहीं हुआ लेकिन नाटकों का विकास जरूर अवरुद्ध हुआ। इसका अर्थ यह नहीं था कि नाटक बिल्कुल समाप्त हो गए। जिन्हें लोक नाटक कहा जाता है वे अब भी खेले जाते थे। यही नहीं रामलीला, रासलीला आदि का इस दौर में अधिक विस्तार हुआ। बारहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक जिस भक्ति आंदोलन का दौर सारे भारत में चला वह यह भी बताता है कि जनसंचार के साधनों के अभाव के बावजूद भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का एक–दूसरे से गहरा संपर्क था। इसने भारत को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से एक्यबद्ध रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

इसी मध्ययुग में यूरोप की विभिन्न जातियाँ व्यापार के लिए भारत में आने लगीं। इनमें सबसे पहले पहुँचने वालों में पुर्तगाली थे। 27 मई, 1498 में केरल के कालीकट तट पर कोटगामा अपने दल–बल के साथ पहुंचा था। बाद में डच,

अंग्रेज और फ्रच मा भारत भूमि पर पहुंचे और उन्होंने पहले तटवर्ती क्षेत्रों और फिर धीरे–धीरे भारत के अंदरुनी हिस्सों पर अपना अधिकार जमाना शुरू किया। इसमें सबसे अधिक सफलता अंग्रेजों को प्राप्त हुई जिन्होंने प्लासी के युद्ध (जून, 1757) में सिराजुद्दौला को पराजित कर अपने राज्य की नींव कायम की और लगभग दो सौ साल तक भारत में शासन किया। भारत के आधुनिक इतिहास की शुरुआत अंग्रेजों के शासन कायम करने और उसके विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्ष से ही होती है।

4.4.3 आधुनिक काल में जनसंचार

जनसंचार के मामले में भारत अमरीका और यूरोप के विकसित देशों की तुलना में काफी पीछे रहा है। लेकिन पिछले दो दशक में इसका जिस तीव्रता से विकास हुआ है उससे यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि किसी और क्षेत्र में चाहे हम उतनी प्रगति न कर पाएँ लेकिन संचार माध्यमों के क्षेत्र में हम पश्चिमी देशों से बहुत पीछे नहीं होंगे। आज हमारे देश में जनसंचार के सभी आधुनिक साधन मौजूद हैं। मुद्रित, श्रव्य और दृश्य तीनों तरह के माध्यमों का तेजी से विकास हुआ है। आज भारत में इंटरनेट का प्रयोग करने वालों की खासी बड़ी संख्या है। इसी तरह कंप्यूटर के सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है। आधुनिक माध्यमों को लिए जिन कृत्रिम उपग्रहों की जरूरत होती है उन्हें बनाने और अंतरिक्ष में स्थापित करने में भी भारत ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है जिससे भारत को रेडियो और टेलीविजन के प्रसार में ही नहीं . . बल्कि टेलीफोन और कंप्यूटर प्रणाली के नेटवर्क को फैलाने में भी उलेखनीय प्रगति मिली है। इन सबका हमारे विकास पर अनुकूल असर होने की आशा की जा सकती है। यह अवश्य है कि जनसंचार के आधुनिक साधनों का आविष्कार करने में भारत का कोई उल्लेखनीय योग्य योगदान नहीं है। आजादी से पहले बेतार के तार की खोज करने में जगदीशचंद्र बोस का नाम लिया जा सकता है लेकिन इस खोज का श्रेय भी मार्कोनी के नाम ही इतिहास में दर्ज है क्योंकि भारत पराधीन होने के कारण वैज्ञानिक उपलब्धि के क्षेत्र में वे सुविधाएँ प्राप्त नहीं कर सका जो उसके लिए जरूरी है। यह भी सही है कि आजादी के बाद भारतीय वैज्ञानिकों ने जनसंचार के क्षेत्र में कोई नवीन खोज नहीं की लेकिन भारत के वैज्ञानिक उनको भारत की जरूरतों के रूप में विकसित करने और उसे देश के कोन–कोने में पहुँचाने में कामयाब रहे।

आज भारत दुनिया में सबसे अधिक फिल्में बनाने वाला देश है। भारतीय टेलीविजन पर आज अमरीका के बाद सबसे अधिक चैनल उपलब्ध हैं और हिंदी व अंग्रेजी के अलावा वे अनेक भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध हैं। शायद ही दुनिया के किसी भी अन्य देश में इतनी अधिक भाषाओं में चैनल प्रसारित होते होंगे जितने भारत में होते हैं। हिंदी और कुछ अन्य भारतीय भाषाओं के चैनल दुनिया के बहुत से देशों में देखे जाते हैं। मुद्रण के क्षेत्र में भी भारत समाचारपत्रों और पुस्तकों के प्रकाशन में सराहनीय प्रगति कर चुका है। मुद्रण के क्षेत्र में जो नवीनतम तकनीक उपलब्ध है वह भारत में उपयोग में लाई जा रही है और उसका बाजार भारत में विकसित हुआ है। कंप्यूटर के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

इसका अर्थ यह नहीं समझा जाना चाहिए कि भारत जनसंचार के क्षेत्र में विकसित देशों के समकक्ष आ चुका है। भारत में आधुनिक संचार माध्यमों की शुरुआत करने

का श्रेय अंग्रेजों को जाता है जिन्होंने अपने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए परिवहन और संचार के आधुनिक साधनों का इस्तेमाल भारत में शुरू किया था। उन्नीसवीं सदी के मध्य में उन्होंने रेलों का जाल बिछाना शुरू किया। पहले अखिल भारतीय स्तर पर डाक व्यवस्था आरंभ की और बाद में तार का सिलसिला आरंभ हुआ। फ्रांस में 1895 में फ़िल्म निर्माण के आरंभ के कुछ साल बाद ही भारत में भी फिल्म निर्माण से जुड़ी गतिविधियाँ आरंभ हो गईं। पहली भारतीय फिल्म 1913 में बनी। बीसवीं सदी के चौथे दशक में भारत में रेडियो के प्रसारण की शुरुआत हुई और छठे दशक में टेलीविजन की। उन्नीस सौ अस्सी के बाद टेलीविजन का तेजी से विस्तार हुआ और उन्नीस सौ नब्बे के बाद कंप्यूटर का। यहाँ तक कि कुछ विद्वानों ने इसे भारत के संचार और सूचना के क्षेत्र में तीव्र गति से आगे बढ़ने का परिचायक माना है और इसे सूचना समाज बनने की दिशा में ठोस पहलकदमी कहा है। लेकिन इन सबके बाजवूद सच्चाई यह है कि आज भी भारत के सभी गाँवों में रोजाना डाक का वितरण नहीं होता है। टेलीफोन के तार सभी गाँवों तक नहीं पहुंचे हैं। अभी भी लगभग एक तिहाई आबादी साक्षरता से वंचित है और सिर्फ पाँच फीसदी ही विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कालेजों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश ले पाते हैं। भारतीय समाज में व्याप्त इन विषमताओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है। भारतीय समाज में विकास की प्रक्रिया दो विपरीत दिशाओं में गतिशील है। एक ओर समाज का छोटा हिस्सा जिसका उत्पादन के साधनों, राजनीतिक सत्ता और नौकरशाही तंत्र पर किसी–न–किसी रूप में नियंत्रण है, वह तेजी से सूचना समाज की ओर बढ़ रहा है, तो दूसरी ओर भारतीय समाज का बहुमत अभी भी विकास के प्रायः सभी क्षेत्रों से बाहर है। वह अभी भी जीवन की बुनियादी जरूरतों को जुटाने के संघर्ष में ही मर–खप रहा है। समाज का जो हिस्सा सूचना समाज की ओर बढ़ रहा है वह भी इसके लिए पश्चिम के विकसित देशों पर काफी हद तक निर्भर है। मीडिया के भूमडलीकरण पर विचार करते हुए अमरीकी मीडिया विशेषज्ञ रॉबर्ट डब्ल्यू. मेक्चेस्ने कहते हैं कि भूमडलीय बाजार की यह मुख्य प्रवृत्ति है कि उसका झुकाव एक अत्यधिक असमान विश्व भर में व्याप्त मीडिया प्रणाली के विकास की ओर रहता है। व्यावसायिक मीडिया बाजार उन लोगों को ही अपनी ओर खींचने की कोशिश करता है जिनके पास उनके उत्पादों को खरीद सकने योग्य पैसा हो, और जिनके पास खरीद सकने लायक पर्याप्त पैसा होता है, विज्ञापन भी उन्हें ही संबोधित होते हैं। यदि उन्हें कोई ऐसा बाजार नजर आता है तो वे शीघ्र ही उस ओर बढ़ते हैं। मेक्चेस्ने ने इस संदर्भ में भारत का उदाहरण प्रस्तुत किया है। उन्हीं के शब्दों में, भारत जैसा देश इसका प्रमाण है। 90 करोड़ की आबादी वाले इस देश की आधी से अधिक आबादी भूमंडलीय मीडिया बाजार के लिए अप्रासंगिक है और कई पीढ़ियों तक वह ऐसे ही अप्रासंगिक बनी रहेगी, लेकिन संपन्न मध्यवर्ग का मामला दूसरा है। अकेले भारत में 25 करोड़ आबादी मध्यवर्ग के अंर्तगत आती है।' डिज्ने के माइकेल आइजनर के अनुसार, 'यह एक बहुत ही बड़ा अवसर है और यही वजह है कि पिछले एक दशक में भूमंडलीय मीडिया बाजार से उसे जोड़ने का सराहनीय प्रयास किया गया है। यही बात एशिया, मध्य पूर्व और दक्षिण अमरीका के उच्च और मध्यवर्ग के बारे में भी कही जा सकती है। (दि ग्लोबल मीडिया, पृ. 64) भारतीय समाज में सूचना और समाज के अंतःसंबंधों को भी इन बुनियादी अंतर्विरोधों के प्रकाश में ही देखा जाना चाहिए।

4.5 जनसंचार और जनसंस्कृति

जनसंचार के साथ जनसंस्कृति की संकल्पना भी सामने आई है। जनसंस्कृति को प्रायः ऐसे लोगों की संस्कृति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिनकी अभिरुचियाँ निम्न स्तर की होती हैं। यहाँ प्रायः दो तरह की धारणाएँ देखने को मिलती हैं। एक तो यह कि साधारण लोगों को जनसंस्कृति के ऐसे ही रूपों में आनंद मिलता है, यानी अभिजात संस्कृति और जनसंस्कृति का फर्क अपरिहार्य है क्योंकि दोनों वर्गों की अभिरुचियाँ एक सी नहीं हो सकतीं। दूसरा नजरिया यह है कि जनसंस्कृति निम्न या विकृत होती है, लेकिन इसके लिए लोग उत्तरदायी नहीं होते बल्कि वे जिम्मेदार होते हैं जो अपने लाभ और छलपूर्ण उद्देश्यों के लिए साधारण लोगों पर उसे थोपते हैं (जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, पृ. 134)।

जनसंचार और जन संस्कृति के परस्पर संबंधों के संदर्भ में फ्रेंकफर्ट स्कूल की विचारधारा का उल्लेख आमतौर पर किया जाता है। फ्रेंकफर्ट स्कूल से संबंधित विचारकों ने ही सबसे पहले जनसंचार के संदर्भ में सांस्कृतिक प्रश्नों पर गहनता से विचार किया था। इन विचारकों में सबसे महत्वपूर्ण हैं : मेक्स होर्किमीर और थ्योडोर एडोर्नो। इसके साथ ही वाल्टर बेंजामिन और हर्बट मार्दूज की भी गणना की जाती है। इसके अनुसार, इजारेदार पूंजी अपनी कामयाबी के लिए जिन प्रमुख साधनों का इस्तेमाल करती है उनमें जनसंस्कृति का स्थान सबसे ऊपर है। वस्तुओं, सेवाओं और विचारों के जनोत्पादन की संपूर्ण प्रणाली पूंजीवादी व्यवस्था में बेचे और खरीद जाने के लिए होती है। यह व्यवस्था प्रत्येक वस्तु और विचार को जिंस में बदल देती है और जो यह मानती है कि ललित कलाओं की सर्वोत्तम अभिव्यक्तियाँ हों या विरोधी या आलोचनात्मक संस्कृति सभी को बेचा जा सकता है। पूंजीवादी समाज में संस्कृति को जिंस में बदल दिए जाने की धारणा में चाहे कितनी ही सच्चाई क्यों न हो यह मत इस अर्थ में पूरी तरह सच नहीं है कि समाज में सभी ने इस अवधारणा को स्वीकार कर लिया है। वस्तुतः यहाँ यह मान लिया गया है कि इजारेदार पूंजी इतनी बलवती है कि इसे संस्कृति के क्षेत्र में चुनौती दी ही नहीं जा सकती।

जन के लिए अंग्रेजी में मास शब्द का प्रयोग किया जाता है। मास शब्द जनता और लोक से भिन्न अर्थ देता है। आमतौर पर मास शब्द लोगों के ऐसे समूह के लिए प्रयुक्त होता है जो किसी विवेकपूर्ण ढंग से और बहुत परिभाषित रूप में व्याख्यायित न की जा सकती हो। मसलन, किसी मेले को देखने के लिए उमड़ी भीड़ या किसी फिल्म के लिए उमड़ी भीड़ वस्तुतः मास के रूप में व्याख्यायित की जाती है। जाहिर है मास शब्द में जनता के प्रति एक तरह का हिकारत का भाव मौजूद रहता है। जनसंस्कृति का अर्थ ही यह है कि ऐसी संस्कृति जो ऐसे जनसमूह के लिए हो जिनकी रुचियाँ निम्नस्तर की हो और जो संस्कारित न हो। जनसंस्कृति के विपरीत अभिजात संस्कृति को रखा जाता है जिनकी रुचियाँ उच्चस्तरीय होती हैं और जिनके संस्कार शिष्ट होते हैं। जनसंस्कृति और अभिजात संस्कृति के बीच यह भेद स्वयं अभिजात वर्ग द्वारा किया जाता है जो इस तरह अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता को स्थापित करता है।

जनसंस्कृति के साथ–साथ लोकप्रिय संस्कृति का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। आमतौर पर लोकप्रिय संस्कृति को इस रूप में परिभाषित किया जाता है कि जो

संस्कृति लोकप्रिय हो वह लोकप्रिय संस्कृति है। लोकप्रियता से यहाँ तात्पर्य यह है कि जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग आनंद प्राप्त करते हैं, लेकिन लोकप्रियता को परिभाषित करना इतना सरल नहीं है। यह मान लिया जाता है कि आज जिसे लोग सबसे ज्यादा पसंद करते हैं और जिसकी सबसे ज्यादा मांग करते हैं वही लोकप्रिय है। लेकिन यह हमारा सामान्य अनुभव है कि जो आज अत्यंत लोकप्रिय है उसकी मांग कल बिल्कुल खत्म हो सकती है। क्या तब भी उसे लोकप्रिय कहा जा सकता है? आमतौर पर लतीफे सुनना सबको पसंद होता है लेकिन क्या वे रचनात्मक कहानी का स्थान ले सकते हैं? लोकप्रियता में आनंद पर बल रहता है और नए से बचने का प्रयत्न किया जाता है। यह माना जाता है कि जो नया होगा वह लोकप्रिय नहीं होगा लेकिन जो पुराना होगा वह भी लोकप्रिय हो यह आवश्यक नहीं है। इसलिए जनसंचार में लोकप्रियता के लिए लोगों की सोच को आघात पहुँचाए बिना और भावनाओं को उद्वेलित करते हुए ऐसे प्रतीकात्मक रूपों का इस्तेमाल किया जाता है जो ग्रहीताओं को सहज ही संप्रेष्य हो। यहां तक कि वे उन रचनात्मक प्रतीकात्मक रूपों को भी लोकप्रियता के ऐसे ढांचे में पेश करने की कोशिश करते हैं जिनसे वे ज्यादा से ज्यादा लोगों को आनंद पहुँचाए – भले ही इस क्रम में वे रूप विकृत हो जाएं।

जनसंस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति की यह सारी संभावनाएँ जनसंचार की वजह से उत्पन्न हुई हैं। जनसंचार ने ऐसी प्रौद्योगिकी को विकसित किया है जिसके कारण इन रूपों का जनोत्पादन संभव हुआ है। जॉन बी थांपसन ने इस संबंध में उचित ही कहा है कि आधुनिक समाजों में प्रतीकातमक रूपों का उत्पादन और प्रसार जनमाध्यम उद्योगों की गतिविधियों से अलग नहीं किया जा सकता। मीडिया संस्थानों की भूमिका इतनी बुनियादी है कि यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि हम अपने रोजमर्रा के जीवन से उन्हें अलगा सकें। जनसंस्कृति के विभिन्न रूपों का प्रसार इसीलिए संभव हुआ है कि वह उनका बार–बार पुनरुत्पादन कर सकती है। प्रतीकात्मक रूपों की पुनरुत्पादकता ने ही जनसंचार के व्यावसायिक दोहन की व्यापक संभावना पैदा की है और इसी वजह से प्रतीकात्मक रूपों का उपभोगीकरण हुआ है। जनंचार के संस्थान इस संभावना को बढ़ावा देते हैं। जनसंचार के ज्यादातर रूप ऐसे हैं जिनमें लोगों की भागीदारी सामूहिक रूप से होती है। इनमें निष्पादक, तकनीशियन और दूसरी गतिविधियों से जुड़े लोग होते हैं जो किसी–न–किसी रूप में संदेशों के संकेतीकरण और विसंकेतीकरण में भूमिका निभाते हैं। इसी प्रकार संदेशों का ग्रहण आमतौर पर सामाजिक संदर्भ में होता है। लोग उन्हें समूह में या परिवार वालों के साथ देखते हैं। इस प्रकार सामूहिकता जनसंचार के सांस्कृतिक पहलू को प्रभावित करती है और कोशिश यह होती है कि वह जितने बड़े पैमाने पर संप्रेषित होनी है उतना ही वह सब तरह के लोगों की विशिष्टता को आहत किए बिना स्वीकार्य बन सके। इस प्रक्रिया में जनसंचार संस्कृति का एक ऐसा रूप विकसित करता है जो अपनी निजी विशिष्टता ही नहीं खोता बल्कि वह विरोध और असहमति के स्वरों को भी या तो हटने के लिए मजबूर कर देता है या उसे डाइल्यूट कर देता है।

4.6 संस्कृति उद्योग

जनसंचार माध्यमों के विकास ने संस्कृति को उद्योग का रूप दे दिया है। संस्कृति उद्योग की संकल्पना रखने का श्रेय फ्रेंकफर्ट स्कूल के विचारकों को है। उन्होंने

संस्कृति उद्योग की प्रकृति और परिणतियों के बारे में विचार किया है। मेक्स हार्कीमर ओर थ्योडोर एर्डोनो ने संस्कृति उद्योग पद का प्रयोग सांस्कृतिक रूपों के उपभोगीकरण के संदर्भ में किया है जिसका विकास यूरोप और अमरीका में उन्नीसवीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी के आरंभ में मनोरंजन उद्योग के उत्थान के साथ हुआ था। उन्होंने इस संदर्भ में फिल्म, रेडियो, टेलीविजन, लोकप्रिय संगीत, पत्रिकाओं और समाचारपत्रों के बारे में विचार–विमर्श किया है। इन विचारकों का मानना है कि मनोरंजन उद्योगों के पूंजीवादी उद्यम के रूप में पनपने का परिणाम सांस्कृतिक रूपों के मानकीकरण और विवेकीकरण में निकला है। इस प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ है कि व्यक्ति इन उत्पादों के बारे में आलोचनात्मक और स्वायत्त रूप में सोचने और कर सकने की क्षमता खोता जा रहा है। इन उद्योगों के द्वारा जो सांस्कृतिक वस्तुओं का उत्पादन हो रहा है वह पूंजीवादी संचयन और मुनाफा हासिल करने के लिए हो रहा है। वे जनता द्वारा स्वत रफूर्त ढंग से नहीं पनप रहे हैं बल्कि जनता द्वारा उनका व्यापक पैमाने पर उपभोग हो सके इस नजरिए से उनका उत्पादन हो रहा है (आइडियोलॉजी एंड मोडर्न कल्चर, पृ. 98)। संस्कृति उद्योग द्वारा जो उत्पादन होता है वह अपने आंतरिक गुणों और कलात्मक रूप के तौर पर नहीं पहचाने जाते बल्कि उपभोक्ता उत्पादन और विनिमय के निगम तर्क (कारपोरेट लॉजिक) द्वार पहचाने जाते हैं।

हर्बट माँयूज ने अपनी पुस्तक 'वन डाइमेंशनल मेन' में लिखा है कि विकसित पूंजीवाद में उत्पादन की प्रत्यक्ष विकासशीलता ही सामाजिक व्यवस्था को उसी रूप में आलोचना के लिए निरापद बना देती है। व्यवस्था अपनी सफलता, वस्तुओं को उत्पादित करने की अपनी क्षमता से 'बेचती ' है। उनके अनुसार, 'उत्पादकीय उपकरण और वस्तुओं और सेवाओं जिसके द्वारा यह (विकसित पूंजीवाद) पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को थोपने या 'विक्रय' का उत्पादन करती है। जन परिवहन और जनसंचार के साधनों, आवास, भोजन और वस्त्र की उपभोक्ता वस्तुओं, मनोरंजन और सूचना के अप्रतिरोधी उत्पादन अपने साथ निर्धारित प्रवृत्तियों और आदतों, निश्चित बौद्धिक और भावात्मक प्रतिक्रियाओं को लाते है जो उपभोक्ताओं को उत्पादकों से कमोबेश खुशी से बाँधे रखते हैं और बाद वाले (मनोरंजन और सूचना उत्पादन) के जरिए वह संपूर्ण (व्यवस्था) से बंधा रहता है। उत्पाद शिक्षित करते हैं और जोड़–तोड़ करते हैं, वे मिथ्या चेतना को प्रोत्साहित करते हैं जो कि इस मिथ्यात्व के विरुद्ध प्रतिरक्षित होते हैं... इस प्रकार एक आयामी विचार और व्यवहार का पैटर्न उभरता है जिसमें कि विचार, आकांक्षाएँ और उद्देश्य, अपनी अंतर्वस्तु के द्वारा विमर्श और व्यवहार की स्थापित सार्वभौमिकता के पार चले जाते हैं और जो या तो इस सार्वभौमिकता की शर्तों पर अमान्य हो जाते हैं या बलहीन हो जाते हैं। (माँयूज का कथनः कल्चर, सोसाइटी एंड दि मीडिया से उद्धृत, पृ. 43)।' मायूँज यह तर्क देते हैं कि उत्पादन की. व्यवस्था की यह प्रवृत्ति इसे विनाश से बचाती है। इसी कारण सार्वजनिक रूप से जो राजनीतिक मुद्दे विचार–विमर्श के लिए सामने आते हैं वे व्यवस्था का प्रबंध करने में कौन–सी तकनीक सबसे बेहतर होगी, इस सवाल तक ही सीमित रहते हैं। इस प्रक्रिया में वे वैकल्पिक राजनीतिक साध्य जो इनके परे जाते हैं, अपने आप बाहर हो जाते हैं (वही, पृ. 43)। माँयूज कहते हैं कि जनमाध्यम दुनिया के बारे में हम किस तरह सोचें इसकी शर्ते तय करता है। उनका प्रभाव यहीं तक सीमित नहीं होता कि हम किन मुद्दों पर विचार करें बल्कि इस पर भी होता है कि हम किस तरह सोचें। इस तरह वे हमारे संपूर्ण

बौद्धिक संसार को अनुकूलित करते हैं (वही, पृ. 440। संस्कृति के उद्योग बनने का प्रभाव हमारे सामाजिक जीवन पर बहुत गहरा दिखाई देता है। आगे के भाग में जनसंचार के विरूपीकरण की संक्षित चर्चा करेंगे।

4.7 संस्कृति का विरूपीकरण

जनसंचार में हमारे सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करने की कितनी क्षमता है इसका सैद्धांतिक ढांचा आपके सामने साफ हो गया होगा। अगर हम आज भारतीय समाज को देखें तो सांस्कृतिक विरूपीकरण की इस प्रक्रिया को आसानी से समझ सकते हैं। आमतौर पर इस विरूपीकरण की प्रक्रिया को पश्चिम के विकृत प्रभाव के रूप में देखा जाता है जो इस पूरे सवाल को गलत और अधूरे नजरिए से देखना है। जनसंचार के साधनों के बढ़ते जाने का सबसे अधिक लाभ शासक वर्ग को होता है जो जल्द ही उन साधनों को अपने स्वामित्व में ले लेता है। उसे यह समझने में भी ज्यादा समय नहीं लगता कि इन साधनों के द्वारा जो उत्पादित होगा वह सांस्कृतिक उत्पाद है इसलिए वह ऐसे उत्पादों को ही प्रोत्साहित करता है जो जनता पर सांस्कृतिक वर्चस्व बनाने में और बनाए रखने में मदद करे। जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं वह इसके लिए उन सभी सांस्कृतिक उत्पादों को प्रोत्साहित करता है जो लोगों में क्षणिक आनंद प्रदान कर सकते हैं जो लोगों को ऐसी ऐंद्रिक उत्तेजना प्रदान करे कि वे अपनी बौद्धिक और आत्मिक क्षमताओं को सक्रिय करने की आवश्यकता महसूस न करें। यह काम यदि पश्चिमी सांस्कृतिक उत्पादों से हो या पूर्वी इससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। खास बात यह है कि उसका मुख्य मकसद उत्पाद के उपभोग पर टिका होता है। जनसंचार के द्वारा ऐसे उत्पादों को प्रोत्साहित करने की कोशिश भी होती है जिनसे लोगों में उन रूढ़िवादी मूल्यों के प्रति विश्वास बना रहता है जो जनता के सामूहिक विकास और प्रगति में बाधक होते हैं और वे उन लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज को बनाने के प्रयत्न कर यकीन छोड़ बैठते हैं जिन पर जनता का बढ़ता यकीन स्वयं शासक वर्ग के लिए खतरनाक साबित हो सकता है। आमतौर पर देखा यही गया है कि जब फिल्मों में नग्नता का विरोध किया जाता है तो उसके बदले में जिस चीज की मांग की जाती है वह है औरतों की गतिविधियों को घर तक सीमित रखना और उन्हें पुरुषों के वर्चस्व में रखना। इस प्रकार स्त्री दोनों ही स्थितियों में अपनी स्वतंत्रता से वंचित रह जाती है। इसी प्रकार जनसंचार पर क्या दिखाया जाए और क्या नहीं इसको नियमित और नियंत्रित कर राजसत्ता आमतौर पर लोगों की अभिव्यक्ति के अधिकार को छीन लेती है। इसलिए जनसंचार के द्वारा सांस्कृतिक विरूपीकरण के सवाल को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए।

जनसंचार के द्वारा सांस्कृतिक विरूपीकरण का सबसे खतरनाक पहलू यह है कि वह भौतिक वस्तुओं की तरह सांस्कृतिक उत्पाद को भी आनंद के लिए भोग की वस्तु बना देता है। इस कारण व्यक्ति की स्वयं की बौद्धिक और रचनात्मक ऊर्जा का ह्रास होने लगता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जनसंचार माध्यमों से किसी तरह की स्वस्थ और मानवीय संस्कृति की संभावनाएँ खत्म हो गई हैं। इसके विपरीत इन माध्यमों में हर स्तर पर स्वस्थ और अस्वस्थ और मानवीय और उपभोक्तावादी सांस्कृतिक मूल्यों के बीच संघर्ष चलता रहता है। यह संघर्ष एक ही उत्पाद में भी देखा जा सकता है।

4.8 सारांश

प्रथम खंड की इस अंतिम इकाई का आपने अध्ययन किया है। 'जनसंचार और संस्कृति' नामक इस इकाई में आप अब तक कई महत्वपूर्ण बातों का अध्ययन कर चुके हैं। आप जान चुके हैं कि संस्कृति से क्या तात्पर्य है। संस्कृति का संबंध मानव जीवन की सभी गतिविधियों से होता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ संस्कृति का विकास होता है। जैसा हमारा सामाजिक जीवन होता है उसी के अनुसार संस्कृति भी विकसित होती है। सामाजिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव संस्कृति पर भी पड़ता है। प्रत्येक जातीय समूह की अपनी सांस्कृतिक परंपरा होती है और सभी जातीय समूह की सांस्कृतिक परंपराओं के समुच्चय से मानव संस्कृति का निर्माण होता है। संस्कृति की अवधारणा को समझने की चार पद्धतियाँ मानी जा सकती हैं : 1) संस्कृति की क्लासिकल अवधारणा, 2) संस्कृति की वर्णनात्मक अवधारणा, 3) संस्कृति की प्रतीकात्मक अवधारणा, और 4) संस्कृति की संस्कृति के प्रसार और प्रचार में जनसंचार की केंद्रीय भूमिका होती है। जनसंचार जिन प्रतीकात्मक रूपों का उत्पाद करता है वे वस्तुतः सांस्कृतिक उत्पाद हैं। इन उत्पादों के संप्रेषण के तीन पहलुओं का उल्लेख किया जा सकता है : 1) संप्रेषण का तकनीकी माध्यम, 2) संप्रेषण के संस्थागत साधन, और 3) संप्रेषण में शामिल देशकाल अंतराल। जनसंचार और संस्कृति से जुड़े कई सवाल उभरते हैं जिनमें संस्कृति के वर्चस्व का सवाल भी प्रमुख है। इकाई में इस मुद्दे पर भी गहराई से विचार किया गया है।

जनसंचार की परंपरा का संबंध मानव विकास से है। भाषा का विकास जनसंचार का प्रथम महत्वपूर्ण माध्यम है। भारतीय इतिहास में भाषाओं का विकसित रूप हमें हड़प्पा सभ्यता से मिलता है। इसके अलावा कई ऐसे रूप भी मिलते हैं जिनका जनसंचार के विभिन्न रूपों में इस्तेमाल होता था। लेकिन जनसंचार के आधुनिक माध्यमों का विकास भारत में औपनिवेशिक काल में आरंभ हुआ। आज भारत में वे सभी साधन उपलब्ध हैं जो किसी भी विकसित देश में प्रयुक्त होते हैं। लेकिन इन साधनों का उपयोग सिर्फ वे ही लोग कर पाते हैं जिनके पास उनके इस्तेमाल के लिए आर्थिक क्षमता उपलब्ध है।

जनसंचार के साथ जनसंस्कृति का भी विकास हुआ है। जनसंस्कृति का अर्थ सामान्य जन की संस्कृति से लिया जाता है जिसे अभिजात संस्कृति की तुलना में निम्नस्तर की माना जाता है। जनसंस्कृति को जनसंचार के लिए जनोत्पाद का परिणाम माना जाता है। जनसंस्कृति को लोकप्रिय संस्कृति के रूप में भी पेश किया जाता है जो आम जनता में लोकप्रिय हो वह जनसंस्कृति मानी जाती है। आप इस इकाई में जनसंस्कृति और जनसंचार के अंतःसंबंधों को समझ चुके हैं।

जनसंस्कृति के विस्तार के साथ संस्कृति ने एक उद्योग का रूप धारण कर लिया है। सांस्कृतिक उत्पादों को एक उद्योग का रूप देना पूंजीवादी व्यवस्था की परिघटना है जिसका मकसद इसके द्वारा पूंजी का संचयन और मुनाफा कमाना है। संस्कृति को उद्योग का रूप देने के लिए सांस्कृतिक वैविध्यता को नष्ट कर उसे एक आयामी बनाया जाता है। संस्कृति के उद्योग ने सांस्कृतिक विरूपीकरण की प्रक्रिया को भी बढ़ावा दिया है। यह लोगों में रचनात्मक और बौद्धिक ऊर्जा का विकास करने के बजाए उसे सतही मनोरंजन के क्षणिक आनंद का उपभोक्ता बना

देता है। जनसंचार के इस नकारात्मक पहलू के बावजूद उसमें उससे संघर्ष करने की संभावना का अंत नहीं होता।

4.9 बोध प्रश्न

1. संस्कृति के अर्थ और स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. जनसंचार और संस्कृति के अंतःसंबंधों की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

3. भारत में जनसंचार के विकास का उल्लेख कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

4. जनसंचार के द्वारा सांस्कृतिक उत्पादों के उद्योग के रूप में विकसित होने की सामाजिक परिणतियों पर अपना दृष्टिकोण पेश कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

5. आपके द्वारा देखी गई किसी लोकप्रिय फिल्म को आधार बनाकर सांस्कृतिक विरूपीकरण पर अपना मत प्रकट कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

6. एक नागरिक के तौर पर आप जनसंचार की किस भूमिका को भारतीय राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास के लिए उपयुक्त समझते हैं। इस संबंध में अपना मत

रखते हुए हाल ही में सांस्कृतिक क्षेत्र में उठे ज्वलंत मुद्दों पर भी अपना मत रखिए।

.....

.....

.....

.....

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

गुप्त, बृजमोहन : जनसंचार : विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली

गुप्त, बृजमोहन : स्वाधीनता के 50 वर्ष शृंखला : मनोरंजन और कला, पीताम्बर प्रकाशन, नई दिल्ली

जोशी, पूरन चंद्र : संस्कृति, विकास और संचार क्रांति, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली–110092.

थांपसन, जॉन बी. : आइडियोलॉजी एंड मॉडर्न कल्चर, पोलिटी प्रेस, केंब्रिज, यू.के.

धूलिया, सुभाष : सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली–110092.

पारख, जवरीमल्ल : जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली–110092.

पारख, जवरीमल्ल : जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली–110092.

बिल्गटन, रेजामंड एवं अन्य (संपादित) : कल्चर एंड सोसाइटी, मेकमिलन, लंदन

विलियम्स, रेजामंड : संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथ शिल्पी, जी–82, विजय चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली–110092.